*ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA*
**ISSN No.: 2347-2944,** RNI:UPBIL04292, REG. No.: 561/2013-2014 Vol.-2, No.-2, **PP-287-292**,YEAR-2015

# प्राचीन भारतीय जीवन में आर्थिक संघों (श्रेणियों) की भूमिका

❑ **डॉ0 पंकज शर्मा**

***प्रस्तावना –*** *भारतीय दर्शनानुसार मानव जीवन के चार पुरूषार्थों में 'अर्थ' का सुप्रतिष्ठत स्थान रहा है। प्राचीन काल में समाज का उत्कर्ष, मनुष्य के आर्थिक जीवन की सम्पन्नता, समुन्नति, एवं सुख–सुविधा पर निर्भर करता रहा है। वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत रहकर व्यक्ति पुरूषार्थ के माध्यम से दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति तो करता ही था, साथ ही भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति भी करता था। चूंकि मनुष्य की मनोवांछित सामग्री की पूर्ति अर्थ द्वारा ही होती है अतः अर्थ को मनुष्य के भौतिक एवं लौकिक सुख प्रदान करने वाला विशिष्ट तत्व स्वीकार किया गया है। कौटिल्य, बृहष्पति, याज्ञवल्य तथा नारद आदि विचारकों ने भी मनुष्य के जीवन में अर्थ की उपादेयता को स्वीकार किया है। प्राचीन काल में अर्थ एवं धन के उपार्जन सम्बन्धित कार्य के लिये 'वार्ता' शब्द का प्रयोग किया जाता था, जो मनुष्य के आर्थिक कियाकलापों से सम्बन्धित था। वस्तुतः वार्ता शब्द वृत्ति से निकला है जो व्यवसाय और उसके निमित्त किये जाने वाले कार्य से सम्बन्धित है। कौटिल्य, एवं मनु तथा रामायण एवं महाभारत आदि में वार्ता के महत्व को स्वीकार करते हुये इसकी व्याख्या कृषि, पशुपालन, और वाणिज्य से की गई है, जिनका व्यक्ति, समाज, और राष्ट्र के उत्थान में उल्लेखनीय महत्व था।*

भारतीय समाज के आर्थिक जीवन का विकास क्रमशः हुआ। प्रारम्भिक आर्यो द्वारा यायावरी जीवन में आस्था रखने के कारण पषुपालन ही अधिक युक्तियुक्त था। तत्पष्चात स्थाई जीवन में परिवर्तित हांने पर वैदिक समाज में 'आर्यविश' तथा 'कृष्टि' दों वर्ग बन गये–प्रथम अभिजात वर्ग, जिसमें ब्रहाम्ण और राजन्य आते थे, एवं द्वितीय साधारण वर्ग– जिसमें कृषि, कला, कुसीद, एवं व्यापार करने वाले लोग सम्मिलित हो गये। उत्तर वैदिक काल तक आते–आते कृषि का उत्तरोत्तर विकास होता गया। कृषि कर्म तात्कालिक सामाजिक मानदण्ड को भी स्पष्ट करता था, जिसके फलस्वरुप मनुष्य को पत्नी, सम्पत्ति एवं पशु का उपभोग प्राप्त होता है। वेदों में कृषि सम्बन्धी अनेक श्रमजीवियों का भी उल्लेख किया गया है, जिनमें स्त्री एवं पुरुष दोनों शामिल थे। ये वेतनभोगी श्रमिक (कामगार) दिनभर कार्य करने के पश्चात सॉयकाल ही घर लौट पाते थे। प्राचीनकाल में गॉवों तथा नगरों के विकास के फलस्वरुप अनेक व्यवसायों में कुटीर उद्योगों, यांत्रिक कलाओं, व्यापार एवं वाणिज्य से सम्बन्धित व्यवसाय एवं सेवाओं का अभ्युदय हुआ, जिनके लिये कुषलता एवं बुद्वि अपेक्षित थी। ऐसे कारीगर वर्ग में, जिन्हें वैदिककाल में 'कारुक' कहा जाता था, कुल 5 पेशेवर समूह शामिल थे– कुलाल (कुम्हार), कर्मकार (लुहार), वर्धकिन (बढ़ई), नापित (नाई) तथा रजक (धोबी)। इन व्यवसायों में विशेष कौशल की आवश्यकता होती थी। साधारणतः पुत्र अपने पिता के व्यवसाय को ही अपनाता था तथा व्यवहारिक प्रशिक्षण द्वारा वह इन कलाओं में निपुणता प्राप्त कर लेता था। प्राचीन उद्योगों तथा व्यापारिक गतिविधियों का आधार व्यक्तिगत कारीगरी ही था, जिसमें उसके परिवारिकजन सहयोग प्रदान करते थें, वही बड़े–बड़े व्यवसायिक उद्योग भी प्रायः चला करते थे जो मूल्य साध्य श्रम से संचालित होते थे तथा जिनमें सवेतन कारीगर कार्य किया करते थे। इन कारीगरों के शोषण से बचाव हेतु सहकारीसंघ (श्रेणी) होते थे, जो प्रायः श्रम विभाजन को प्रोत्साहन देते थें।

एसो. प्रो., इतिहास विभाग, नेहरू पी.जी. कॉलेज, ललितपुर (उ0प्र0) भारत

धीरे–धीरे इन कारीगरों के अपने संघ विकसित होते गये, जिनके माध्यम से उनके व्यापारिक हितों के साथ ही समाज के आर्थिक स्वरुप में भी उनके संरक्षण को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

प्राचीन काल में व्यवसायियों एवं कारीगरों (शिल्पकारों) ने मूल्यों एवं कार्य के स्तरों का नियंत्रण करने हेतु तथा अपने–अपने व्यवसाय तथा शिल्प को एक निश्चित दिशा में विकसित, सुगठित तथा सुरक्षा के लिये अपने–अपने संगठित आर्थिक संघों का निर्माण किया। ऐसे संगठित व्यापारिक समूह को 'श्रेणी' कहा जाता था। इन श्रेणी संस्थाओं का प्राचीन भारत के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा मुख्यतः आर्थिक जीवन को समुन्नत, प्रवर्धित और सुसम्पन्न बनाने में अद्वितीय योगदान रहा है। प्राचीन साहित्यों में 'श्रेणी' के लिये अनेक शब्द प्रयुक्त होते थे, जैसे– कुल, पूग, निकाय, समुदाय, समूह, व्रात, संघ जाति, सम्भूय–समुत्थान, परिषद, वर्ग, सार्थ और निगम आदि। हॉलांकि इस प्रकार की व्यापारिक संस्था का उदय कुछ धूमिल एवं अनिश्चित रुप में पूर्व वैदिक काल में ही हो चुका था। ऋग्वेद में श्रेणी के लिये कहा गया है कि वह हंसों के समूह की भांति कार्य करती थी। कौटिल्य ने शिल्पकारों के समूह को श्रेणी कहा है। उसने कृषि, व्यापार, और सैन्यकार्य करने वाले लोगों की सहकारी संस्था को भी श्रेणी कहा है। मेघातिथि के अनुसार वेदज्ञ, ब्राहाम्ण, वणिक, षिल्पकार आदि के संघ ही श्रेणी हैं। मिताक्षरा के अनुसार भिन्न–भिन्न जाति के लोगों का भिन्न संगठन श्रेणी था, जो अपनी किसी एक वस्तु का विक्रय करता था। इस प्रकार श्रेणी संगठन में नाना जाति के लोग भिन्न–भिन्न शिल्पों से संबधित थे। वीरमित्रोदय में भी एक शिल्प पर जीवन यापन करने वाले वर्ग के संगठन को श्रेणी की संज्ञा दी गई है। बौद्व ग्रंथों के रचनाकाल तक समाज में शनै–शनै विभिन्न व्यवसायियों एवं शिल्पों का विकास होने लगा। समाज में विभिन्न व्यवसाय एवं शिल्प से संबधित विभिन्न संगठित समूह, सामूहिक एवं व्यक्तिगत हितों की देंखभाल करते हुये भारत के प्रत्येक बड़े नगरों में स्थापित होने लगे, जो लगभग सभी प्रकार के व्यवसायों एवं शिल्प को अपनी सीमा में बॉधे हुये थे।

इस प्रकार नागरिक जीवन के विकास के साथ–साथ व्यवसायियों एवं शिल्पियों का ग्रम से नगरों की ओर पलायन होने लगा तथा अपनी सुविधा की दृष्टि से उन्होनें अपने–अपने संगठित समूहों का निर्माण किया। बौद्व जातकों एवं अन्य साहित्यों में अनेकानेक श्रेणियों का उल्लेख किया गया है, जिनकी संख्या 18 अथवा उससे भी अधिक ज्ञात होती है–1. बढ़ई 2. स्वर्णकार 3. चर्मकार 4. दन्तकार 5. बेसकार (बांस का कार्य करने वाले) 6. पत्थर का कार्य करने वाले 7. ओदयंत्रकार (पनचक्की चलाने वाले) 8. कंसकार (ठठेरे) 9. रत्नकार (जौहरी) 10. कुम्हार 11. बुनकर 12. तिलपिशक (तेली) 13. रंगरेज 14. चित्रकार 15. कृषक 16. डलिया बनाने वाले 17. धान्निक (धान के व्यापारी) 18. मछुये 19. कसाई 20. नाई 21. माली 22. नाविक 23. चरवाहे 24. सार्थसहित व्यापारी 25. डाकू तथा लुटेरे 26. वनआरक्षी 27. महाजन आदि। इसके अलावा लबादा बनाने वाले (प्रावारिक), इत्र बेचने वाले (गांधिक), घी रखने के पात्र बनाने वाले (घृतकुंडिक), शीरा बनाने वाले (गोलिक), दही का कार्य करने वाले (दधिक), कपड़ा बनाने वाले (कार्पासिक), खांड़ बनाने वाले (खंडकारक), हलवाइयों की (मोदकारक), गेंहूके आटे के व्यापारियों की (समितिकारक), जौ पीसने वाले (सत्तुकारक), फल विक्रेंताओं की (फलवणिज), मूलों के व्यापारी (मूलवणिज), किराने का सामान बेचने वालों की (अन्तवणिज), और आटा पीसने वालों की (चूर्यकुट्टक) आदि श्रेणियॉ भी थीं। उक्त सभी श्रेणियॉ लगभग 1500 वर्ष से भी अधिक समय तक ईसापूर्व 6ठी शताब्दी से लेकर सन् 1000 ई0 के बाद तक अस्तित्व में रहीं।

इन श्रेणियों का लोकतांत्रिक आधार पर विकास हुआ तथा इनका अपना पृथक स्वतंत्र विधान भी होता था, जिसके नियमों का अनुसरण करते हुये ये अपना कार्य करतीं थीं। बौद्व साहित्यों में श्रेणी संगठन पर प्रकाश डाला गया है। बृहस्पति स्मृति से

ज्ञात होता है कि श्रेणी संगठन की एक प्रबन्धकारी समिति होती थी, जिसमें 5,3 अथवा 2 सदस्य होते थे। समिति के सदस्य कार्यनिपुण, सत्यनिष्ठ, ईमानदार, योग्य, ज्ञाता, कर्तव्यनिष्ठ तथा उच्च कुल के होतें थे। श्रेणी संघ के प्रमुख को 'जेट्टक' की संज्ञा दी जाती थी, जैसे–कुम्भकार जेट्टक, मालाकार जेट्टक, बड्ढकि जेट्टक आदि अलग–अलग शिल्प संघों के प्रमुख होते थे। 'सेट्टि' का अर्थ भी श्रेष्ठ था। सबसे बड़ा प्रमुख महासेट्टि तथा उससे छोटा 'अनुसेट्टि' एवं सबसे छोटा 'उत्तर सेट्टि' कहलाता था। व्यापारी संघ का सबसे श्रेष्ठ ही संभवतः श्रेष्ठि कहा जाता था,एवं उसकी अनुपस्थिति में' अनुसेट्टि' संघ के कार्यो को देखता था। सेट्टि का पद अत्यन्त प्रतिष्ठित पद होता था, जिसका राजदरबार एवं राजा द्वारा सम्मान भी किया जाता था। संघ की बैठकें सुविधानुसार भिन्न–भिन्न स्थानों पर आहूत की जातीं थीं, जहां सदस्य सम्मिलित होकर अपने विचारों का आदान–प्रदान किया करते थे। यद्यपि संघ की कार्यवाही एवं कार्यप्रणाली को सुचारु रुप से संचालित करने हेतु एक कार्यालय भी होता था। सदस्यगण प्रायः इक्कठे होकर सर्वमान्य विषयों पर विचार विमर्श किया करते थे। विचार करते समय युक्तिसंगत कथन को हानि पहुंचाने, वक्ता के बोलने में रुकावट डालने अथवा अनुचित बात कहने वालों कों 'पूर्वसाहस दंड' देने का विधान था। श्रेणी की साधारण सभा पुराने सदस्यों को हटाकर नये सदस्यों को चुन सकती थी, एवं नया सदस्य तत्काल ही अपना कार्यभार ग्रहण कर लेता था। इसके अलावा कोई भी सदस्य स्वेच्छा से भी संघ की सदस्यता से त्यागपत्र दे सकता था। कभी इन श्रेणियों में 500 से भी अधिक सदस्य हुआ करते थें। श्रेणियों के सेट्टि पद की समाज एवं राज्य मे अत्यन्त प्रतिष्ठा होती थी, तथा कभी–कभी राजकुमार एवं सेट्टिपुत्र एक साथ शिक्षा ग्रहण करते थे। उच्चशिक्षा प्राप्त करने हेतु कभी–कभी सेट्टिपुत्र तक्षशिला वि0वि0 भेजे जाते थे। यें सेट्टि प्रायः बहुत धनी हुआ करते थे। जातकों के अनुसार 80 करोड़ की सम्पत्ति (असीमित कोटिविभवों) वाले सेट्टियों का भी उल्लेख हुआ है।

इन आर्थिक संघों ने कारीगरों के सहकारी संघों एवं व्यापार विशेष के व्यक्तिगत श्रमिकों को एक ही सहकारी संस्था मे संयुक्त कर दिया था। इन संघों द्वारा इनके कार्य तथा वेंतन एवं व्यापार की जाने वाली वस्तुओं के स्तर एवं मूल्यों को निश्चित किया जाता था। श्रेणियां मुख्यरुप से उत्पादित माल की गुणवत्ता तथा वस्तुओं की उचित कीमत निर्धारित करती थीं, साथही श्रेणी सदस्यों के व्यवहार की भी देखरेख करती थीं। ये श्रेणियॉ बाजारों में क्रय–विक्रय की वस्तुओं के मूल्यो पर दृष्टि रखने के साथ ही अधिक लाभ लेने वालों को नियंत्रित भी करती थी। आंतरिक एवं बाह्य व्यापार भी ये श्रेणियॉ ही करतीं थीं। इनके सदस्य दूर–दूर तक जाकर संघ के व्यवसायिक लाभ मे सहयोग देतीं थीं। शिल्पियों एवं कारीगरों को कार्य के अनुसार मजदूरी मिलती थी तथा अवकाश के दिनों अथवा अतिरिक्त कार्य कार्य की अतिरिक्त मजदूरी देय होती थी। घटिया सामग्री के उत्पादन अथवा धोखाधड़ी पर कठोर दण्ड देने का विधान था। शिल्पी आदि अधिक मात्रा में श्रेणीसंघों की सदस्यता इसलिये ग्रहण करते थें क्योंकि वे संगठन में अपने को अधिक सुरक्षित महसूस करते थे। इसके अलावा भी श्रेणी संगठनों के अन्य विभिन्न कार्य भी होते थे। इन संघों को अपने नियम बनाने का अधिकार था, जिन्हें कानून की शक्ति प्राप्त होती थी, तथा उन्हें राजा एवं राज्य द्वारा भी स्वीकार किया जाता था। खेत, भूमि, उद्यान, व्यापार, वाणिज्य एवं व्यक्तिगत विवादों के निपटारे में श्रेणी के सदस्य न्यायालय में प्रतिनिधित्व किया करते थें। श्रेणी अपने पृथक नियम बनाती थीं, जिनका उल्लंघन राजद्रोह माना जाता था। संघ की निर्णयकारिणी सभा जातीय पंचायतों के समान एक पथभ्रष्ट सदस्य का निश्कासन कर सकती थी, जो एक ऐसा दण्ड था, जिससे वह अपने पूर्वजों का व्यापार करने से वंचित किया जा सकता था तथा नितान्त भिक्षावृत्ति की स्थिति को प्राप्त हो जाता था। इनके द्वारा इन शिल्पकारों की समुचित सुरक्षा का विषेश घ्यान रखा जाता था।

शिल्पी के हाथ अथवा आँख को क्षति पहुँचाने वाले को मृत्युदण्ड दिया जाता था, तथा उनका सामान चुराने वालों को 100 पण का जुर्माना देना होता था।

ये श्रेणियॉ अपने सदस्यों के आर्थिक ही नहीं अपितु सामाजिक जीवन पर भी अधिकार रखतीं थीं। सदस्यों की विधवाओं एवं अनाथों के अभिभावक के रुप में उनकी रुग्णावस्था की सुरक्षा का आश्वासन ये श्रेणियॉ देतीं थीं। बौद्व साहित्यों में तो ऐसी संघीय न्याय सभाओं का उल्लेख भी प्राप्त होता है जो अपने सदस्यों और उनकी पत्नियों के विवादों को भी शान्त किया करतीं थीं। बौद्व नियमों के अनुसार यह व्यवस्था थी कि कोई भी विवाहित नारी अपने पति एवं अपने पति के संघ की आज्ञा के बिना भिक्षुणी नहीं बनाई जाये। इस प्रकार इस क्षेत्र में उनके अधिकार जातीय पंचायतों के समान थे।

व्यापारिक श्रेणियाँ कभी–कभी अपनी मुद्रायें भी चलातीं थीं। इलाहाबाद के सहजाति नामक प्राचीन टीले एवं तक्षशिला की खुदाई के समय श्रेणियों द्वारा चलाये गये करीब 5 प्रकार के भारतीय एवं यूनानी सिक्के मिले हैं, जिनकी मुद्राओं पर 'नैगम' अंकित है। जिससे अनुमान लगाया जा सकता है के यूनानियों के शासन के पूर्व सौदागरों का निगम नगर प्रशासन चलता था। इन श्रेणियों द्वारा चलाये गये सिक्के कौशाम्बी ,त्रिपुरी, महिश्मती तथा वाराणसी आदि से भी मिले हैं। ये श्रेणियाँ निगम बैंक के रुप में भी कार्य करतीं थीं। वे जनता के धन को विनियोग के रुप में जमा करतीं थीं तथा उस पर नियमित ब्याज भी देतीं थीं। इसके अलावा ये लोगों को ऋण भी देंतीं थीं,तथा ब्याज के साथ ऋण वसूल भी करतीं थीं। 1200 ई0 के नासिक अभिलेंख से पता चलता है कि शक शासक नहपान के जमाता' उशवदात' ने गोवर्धन(महाराष्ट्र) की जुलाहों की एक श्रेणी में 2000 तथा दूसरी में 1000 कार्शापण क्रमषः 12 तथा 9 प्रतिशत ब्याज की दर से जमा कराये थे। इस प्रकार की श्रेणियों के पास स्वयं राजा भी अपना धन विनियोग के रुप में रखा करते थे। गढ़वा अभिलेखानुसार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने भी अपनी पूजी श्रेणियों के पास जमा के रुप मे विनियोग की थी। इस प्रकार श्रेणियों द्वारा बैंकिग व्यवस्था का प्रचलन उत्तर भारत से लेकर महाराष्ट्र तथा आंध्र तक था। विनियोग एवं जायदाद के नियमन का उल्लघंन करने पर लोग तथा ऐसी संस्थायें भी अपराध की भागी होतीं थीं एवं राजा द्वारा उन्हें दण्ड दिया जाता था।

विभिन्न श्रेणीसंघों के अपने प्रतीक चिन्ह (मृगपुच्छकेश पुँज), ध्वज एवं मुहरें आदि भी होंतीं थीं, जिन्हें वे उत्सवों आदि के समय अपने प्रचार–प्रसार हेतु ले जाते थे। इसके अलावा चूँकि ये आर्थिक श्रेणीसंघ अत्यधिक सम्पन्न होते थे, अतः उनके द्वारा राजकीय कोष को प्रभूत आय भी होती थी, तथा साथ ही ये समय–समय पर विपत्ति एवं संकट के समय राज्य को ऋण भी उपलब्ध करातीं थीं। साथ ही जनकल्याणकारी, सामाजिक, एवं धार्मिक कार्य भी समाज एवं राज्य के हित में इन श्रेणियों द्वारा सम्पादित किये जाते थे। दीन–दुखियों की सेवा करना, दुर्भिक्ष में पीड़ितों की सेवा करना, विश्रामगृह, सभागार आदि के निर्माण आदि जनकल्याणकारी कार्य इन श्रेणियों द्वारा विभिन्न स्थानों पर समय–समय पर कराये जाते थें। मंदसौर अभिलेख से ज्ञात होता है कि अन्न विक्रेताओं की श्रेणी द्वारा हौज का निर्माण कराया गया।

इसके अलावा प्राचीन काल में अनेक धर्मसम्बन्धी निर्माणकार्य भी इन श्रेणियों द्वारा कराये जाते थे। बौद्व, जैन, तथा हिन्दूधर्म के अनेक मन्दिर, विहारों एवं देवप्रतिमाओं की स्थापना इन संगठनों द्वारा कराई गई। मंदसौर अभिलेंख में उल्लखित हैं कि रेशम के व्यापारियों ने सन् 437ई0 में सूर्य का एक भव्य मंदिर बनवाया, तथा कालान्तर में उसके भग्न होने पर पुनः इसी श्रेणी द्वारा उसकी मरम्मत कराई गई। 877ई0 के ग्वालियर अभिलेखानुसार मंदिर के लिये तैलिक श्रेणी ने तेल तथा मालिक श्रेणी ने माला प्रदान करने की स्वीकृति दी थी। जुन्नार के एक अभिलेख में वर्णन है कि अनाज व्यापारियों ने एक गुफा और एक कुण्ड दान किया था।

कभी–कभी ये श्रेणियॉ न्यासरक्षकों के रुप में भी कार्य करतीं थीं। वे कुछ विशेष प्रयोजन के रुप में विनियोग किये गये धन के ब्याज द्वारा निर्देशित कर्म का सम्पादन भी करतीं थीं। मथुरा के शक संवत 28 के एक लेंख में ऐसी ही ' अक्षयनीवी' का उल्लेख है, जो दो श्रेणियों को 500 पुराण सिक्कों के रुप में दिया गया था। इसी प्रकार नासिक के विहार में वर्षाकाल में निवास करने वाले 20 बौद्व भिक्षुओं के लिये वस्त्र खरीद हेतु 12–12 कार्शापण की राशि उपलब्ध कराई जाती थी। स्कन्दगुप्त के इंदौर ताम्रपत्र से पता चलता है कि इंद्रपुर के देवविष्णु नामक ब्रहाम्ण ने इंद्रपुर के तैलियों की श्रेणी के पास पूँजी जमा कराई थी जिससे सूर्य मंदिर में दीपक की स्थाई देखरेख की व्यवस्था की जा सकें। नासिक के ही तीसरी सदी के एक लेख में वर्णित है कि श्रेणियों ने कुछ धन जमा किया था, जिसके ब्याज से संघाराम में निवास करने भिक्षुओं और रोगियों को वस्त्र तथा दवा आदि की व्यवस्था की गई थी।

श्रेणियों की शक्ति बढ़ने एवं समाज मे उनका विस्तार होने पर अपने व्यापार की सुरक्षा एवं सामाजिक श्रेष्ठता के मद्देनजर इन श्रेणियों के सैन्य स्वरुप का भी विकास होने लगा। कालान्तर में इन्हें राज्य की ओर से सेना रखने की अनुमति भी प्राप्त हो गई। अतः कुछ श्रेणियॉ मध्यकालीन यूरोप की भॉति अपनी निजी सेनायें भी रखने लगीं, जो उनकी सुरक्षा करतीं थीं, तथा आवश्यकता पड़ने पर सहायक सेना की भाँति राजा की सहायता भी करतीं थीं। कौटिल्य ने भी 'श्रेणीबल' का उल्लेख किया है। कम्बोज, एवं सौराष्ट्र प्रदेशों में क्षत्रियों की श्रेणियों का उल्लेख मिलता है। साथ ही रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों तथा बृहस्पति एवं याज्ञवल्यक जैसे धर्मषास्त्रकारों ने भी श्रेणियों की सैन्य शक्ति का उल्लेख किया है। मंदसौर अभिलेख में वर्णित है कि रेंशम बुनने वाली श्रेणी के लोग धनुर्विद्या में पारंगत होकर अच्छे योद्वा के रुप मे प्रतिष्ठित हो चुके थे।

हाँलांकि इन भिन्न–भिन्न आर्थिकसंघों में एकाधिकार को लेकर आपसी झगडों का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जिसमें एक दूसरे के कर्तव्यों का अतिक्रमण करने एवं एक ही स्थान पर एक ही उद्योग के एक से अधिक संघों का भी कहीं– कहीं वर्णन मिलता है, जो यह संकेत करता है कि संभवतः कभी–कभी आर्थिक संघ विभाजित भी हो जाया करत थे। शिल्पियों के एक नगर से दूसरे नगरों में पलायन करने के उल्लेख भी प्राचीन भारत में पाये जाते थे। किन्तु फिर भी इन व्यापारिक संघों अथवा शिल्पियों की विभिन्न श्रेणियों का तत्कालीन प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। संघों की सहयोग भावना से श्रेष्ठ कारीगरों, शिल्पियों एवं व्यापारियों को सामाजिक श्रेष्ठता, सुरक्षा एवं आत्मसम्मान की प्राप्ति हुई, जो श्रेणियों के अभाव में अन्यत्र संभव नहीं थी।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. मिश्र, जयशंकर,– '' प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास'', हिन्दी माध्यम कार्या0 निदें0, नई दिल्ली, पृ0–569.
2. वही, पृ0–571.
3. वही, पृ0–571.
4. ऋग्वेद – 10.34.13
5. मिश्र, जयशंकर,– पूर्वोद्वत, पृ0–613.
6. चोपड़ा, पुरी, दास, –''भारत का समाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास भाग–1'', मैकमिलन इंडिया लि0 पृ0–129–130.
7. मिश्र, जयशंकर, – पूर्वोद्वत, पृ0–660.
8. ऋग्वेद, –1.163.10
9. अर्थशास्त्र, –5.2
10. मिताक्षरा, –2.192
11. बाशम, ए0 एल0,– ''अद्भुत भारत'', शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं0, आगरा, पृ0–155.
12. श्रीवास्तव, एम0 पी0, '' प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला और दर्शन'' ऐशिया बुक कं0, पृ0–304.
13. चोपड़ा, पुरी, दास, पूर्वोद्वत, पृ0–133.

14. बृहस्पति स्मृति, – 17.8
15. मिश्र, जयशंकर, – पूर्वोद्वत – पृ0–663.
16. वही, पृ0–662.
17. बाशम, ए0 एल0,– पूर्वोद्वत, पृ0–155.
18. श्रीवास्तव, के0 सी0, "प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति", यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, पृ–289.
19. बाशम, ए0 एल0, पूर्वोद्वत, पृ0–156.
20. भारतीय इतिहास–एक प्रामाणिक विशद ज्ञानकोश, प्रयाग पब्लिकेशन,इलाहाबाद, पृ–61.
21. मिश्र, रमानाथ, " प्राचीन भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था एवं धर्म", म0 प्र0 हिन्दी गंथ अका0,भोपाल, पृ0–104.
22. श्रीमाली, के0 एम0, झा, डी0 एन0,– " प्राचीन भारत का इतिहास" हिन्दी माध्यम कार्या0 निदे0,दिल्ली,पृ0–297.
23. श्रीवास्तव, एम0 पी0, पूर्वोद्वत, पृ0–305.
24. मिश्र, जयशंकर, पूर्वोद्वत, पृ0–664.
25. मिश्र, रमानाथ, पूर्वोद्वत, पृ0–104.
26. श्रीमाली, कें0 एम0, झा, डी0 एन0, पूवोद्वत, पृ0–297.
27. मिश्र, जयशंकर, पूर्वोद्वत, पृ0–665.
28. वही, पृ0–666.
29. बाशंम, ए0 एल0, पूर्वोद्वत, पृ0–156.

*****